P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

राजस्थान के लोक देवता "श्री कल्लाजी राठौड़" (धार्मिक परम्परा)

श्याम एस. कुमावत
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय मीरा कन्या
महाविद्यालय, उदयपुर,
राजस्थान, भारत

सारांश

धर्म, परम्परा, अध्यात्म, धार्मिक विश्वास, जन कल्याण, जन–आस्था आदि अवधारणायें भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक प्रमुख पहचान हैं। धार्मिक विश्वास जन–कल्याण एवं जन आस्था पर टिका हुआ है। इसी धार्मिक विश्वास के आधार पर लोक देवताओं की पूजा न सिर्फ उनके मन्दिरों में होती है, बल्कि सीधे–सादे भक्तों के हृदय में भी इनकी पूजा होती है।

लघु परम्परा से तात्पर्य ऐसे विचारों से हैं जिनका उद्‌गम गांवों (स्थानीय संस्कृति) में होता है। इसका विकास ग्रामीण समुदायों में रहने वाले अप्रबुद्ध एवं सामान्यजनों के बीच स्वतः होता है। इसे 'लोक परम्परा' के नाम से भी जाना जाता है। लोक देवता लोक परम्परा से सम्बन्धित है। धर्म, विश्वास एवं आस्था की दृष्टि से देखें तो लोक देवता एक क्षेत्रीय समूह में महान एवं लघु (नगरीय एवं ग्रामीण) परम्परा दोनों से सम्बन्धित हें। नगर एवं गांव दोनों ही क्षेत्रों में इनके मन्दिर एवं देवालय है। आध्यात्मिक विषय में आस्था एवं विश्वास का ही महत्त्व हैं, इसमें तर्क की कोई जगह नहीं है।

भारतीय समाज की लोक परम्परा एवं संस्कृति में लोक देवता अपना विशेष प्रकार्यात्मक स्थान रखते हैं। यह जन–समूह की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, अधि वैयक्तिक, अधि प्राकृतिक आदि विविध परेशानियों एवं समस्याओं का निराकरण एवं समाधान प्रस्तुत करके उन्हें शान्ति एवं सुखी जीवन प्रदान करते हैं। लोक देवताओं के प्रति विश्वास लोगों को मानसिक एकता एवं एकीकरण के सूत्र में बांधता है। इनके माध्यम से हमारी लोक परम्परायें एवं लोक संस्कृति आगे की ओर संचरित होती हैं।

उपरोक्त अनुसंधान में प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य सामग्री, गहन साक्षात्कार, अवलोकन के आधार पर तथ्यों का संकलन किया गया है।

मुख्य शब्द : धर्म, संस्कृति, धार्मिक परम्पराएँ, वृहत परम्परा, लघु परम्परा, लोक देवता, धार्मिक विश्वास, जन आस्था, धर्म का प्रकार्यात्मक महत्त्व, जन कल्याण।

प्रस्तावना

अपनी संपूर्णता में भारतीय संस्कृति, लोक संस्कृति और शास्त्रीय संस्कृतियों का समन्वय हैं। वेद और वाचिक परम्पराएं दोनों ही इस सांस्कृतिक धरोहर के अभिन्न अंग है। भारत के लोग सूर्य, मातृदेवी, शिव, विष्णु, गणेश सभी देवों की पूजा करते हैं। इन वैदिक और पौराणिक देवी–देवताओं के अलावा लोक संस्कृति में अनेक देवी–देवताओं का स्थान हैं। राजस्थान महाकाव्यों के काल से ही योद्धाओं की भूमि रही हैं। कुछ प्रमुख योद्धाओं ने मातृभूमि की रक्षा, गौ रक्षा, डाकूओं से रक्षा, समाज–सुधार एवं जनहितार्थ अपना जीवन समर्पित किया है। इनमें वीर तेजाजी, गोगाजी, पाबूजी, बाबा रामदेव, देवनारायणजी, मल्लीनाथजी, कल्लाजी, सगसजी, हरभूजी, बाबा तल्लीनाथजी, बिग्गाजी, भूरिया बाबा आदि के नाम प्रमुख हैं। राजस्थान में इन स्थानीय देवी–देवताओं के सम्मान में मेले, त्योहार आदि आयोजित किए जाते हैं। जन समुदाय अपनी आस्था एवं विश्वास के आधार पर इन लोक देवताओं की पूजा–आराधना करता है। ये विश्वास दैव कृत्यों से संबंधित कथा–कहानियों पर आधारित होता है। इन किस्से–कहानियों का सामान्य जनों के दिमाग पर गहरा असर होता है और लोग इन पर विश्वास कर पूजा–पाठ किया करते हैं। लेकिन सिर्फ अलौकिक चीजें ही जनता को प्रभावित नहीं करती। उस महापुरूष के चरित्र, सत्यनिष्ठा, वादा पूरा करने का गुण तथा अन्य सद्‌गुण– इन चीजों से उन व्यक्तियों के लिए श्रद्धा पैदा होती है और उन पर विश्वास जम जाता है। यह विश्वास तब प्रगाढ़ हो जाता है जब लोग अपनी विकट समस्याओं, परेशानियों एवं बिमारियों का इलाज एवं समाधान पाने के लिए इन दैव स्वरूप लोक नायकों के स्थापित देवालयों,

देवरों, मन्दिरों एवं शक्ति–स्थलों पर जाते हैं, वहाँ नत–मस्तक होते हैं, भभूत–प्रसाद खाते हैं। आस्थावान लोगों का यह अटूट विश्वास होता है कि इन लोक–देवताओं की असीम अनुकम्पा से ही उनकी अनसुलझी व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान हुआ है जो अन्यत्र कहीं भी नही सुलझ पाई थी। यहीं समाधान आस्था का आधार बनता है। राजस्थान के ऐसे ही एक प्रमुख लोकप्रिय लोक देवता है– श्री वीर कल्लाजी राठौड़।

अध्ययन का उदेश्य

यह लेख, ''धर्म का समाजशास्त्र'' पर आधारित है, इसमें ग्रामीण एवं लोक धर्म की उन धार्मिक परम्पराओं को जानने एवं समझने का प्रयास किया गया है जिसमें जननायक अपने निर्वाण के अनेक वर्ष बाद भी जनहितार्थ एवं जनकल्याण के कार्यों से उन असाध्य समस्याओं एवं पीड़ाओं को दूर करने का प्रयास करते है जिनका निदान अन्यत्र किसी अन्य पद्धति से होना मुश्किल है। लोक देवताओं के प्रति उनके अनुयायियों की गहन आस्था एवं विश्वास ही इसका आधार है।

श्री कल्लाजी का जीवन चरित्र

श्री कल्लाजी राठौड़ का जन्म 1544 ई. (विक्रम संवत 1601 आसोज शुक्ला अष्ठमी) दुर्गाष्ठमी के दिन रविवार को मेड़ता के राव जयमल के छोटे भाई आससिंह (राव श्री आंचलाजी) के यहाँ हुआ था। इनका बचपन का नाम कल्याण जी राठौड़ था। कालांतर में ये कल्लाजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। जन्म के कुछ समय पश्चात् इनके पिता का ईडरगढ़ गुजरात के युद्ध में मेवाड़ की रक्षा करते समय निधन हो गया। कल्लाजी ने अपने लघु भ्राता श्री तेजसिंह के साथ अश्वारोहण, तलवार बाजी और युद्ध सम्बन्धी घात–प्रतिघातों में कौशल अर्जित किया। कृष्ण भक्ति में दीवानी हुई मीरा इनकी बुआ थी। कल्लाजी ने बचपन से ही अपनी कुलदेवी नागनेछा की आराधना करते हुए योग साधना की। अस्त्र–शस्त्र चलाने और औषधि विज्ञान (आयुर्वेद) की भी शिक्षा ली। युवावस्था में वे असाध्य रोगियों का उपचार करने लगे। किशोरावस्था में ही कल्लाजी मारवाड़ छोड़कर मेवाड़–चितौड़ आ गये। महाराणा उदयसिंह जी ने कल्लाजी को उनके शौर्य से प्रभावित होकर रनेला (रंडेला/ रणढ़ालपुर) छप्पन परगने की जागीर प्रदान की। कल्लाजी ने इस क्षेत्र को चोरों और दस्युओं से आतंकित जनता की रक्षा करने की घोषणा की। शीघ्र ही वीर कल्ला ने रंडेला (सलूम्बर के पास) में लूटेरों का दमन कर न्यायकारी राज्य स्थापित किया।

सोम नदी के तट पर बसे भोराई तथा टोकर पालों में ऐसे दस्युओं की बस्तियाँ थी जिनका मुख्य व्यवसाय चोरी ओर डाका था। गमेती पेमला का इस आदिवासी क्षेत्र पर पूरा दबदबा था। वह पांच सहस्त्र लोगों का सिरताज तथा समीप की सभी पालों के मुखियाओं का सरपरस्त था। कल्ला के शासित क्षेत्र से गमेती पेमला के साथियों ने दो सौ गाएँ– बैल आदि चुराकर पेमला को समर्पित कर दी। श्री कल्ला वीर ने कासिद को बुलाया और पत्र लिखवा कर गमेती पेमला को अपने क्षेत्र के अपहृत पशु लौटाने का संदेश भेजा और चोरों को उचित दण्ड की व्यवस्था हेतु आग्रह किया अन्यथा उसे राज्य का शत्रु माना जायेगा। पेमला किसी समझौते के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने पशु लौटाने से तो साफ इनकार कर दिया और पशु लाने वालों को दण्ड के स्थान पर कहा– ''यह हमारा निजी मामला है और हमारे धन्धे में जो भी बाधा डालेगा उसे युद्ध करना होगा।'' वीर कल्ला ने पेमला की इस चुनौती को साहसपूर्वक स्वीकार किया। पेमला की तुलना में श्री कल्ला के पास सैन्य शक्ति कम थी। इन्होनें दो सहस्त्र रण बांकुरे वीरों की सज्जित सेना लेकर भौराईगढ़ की और कूच किया।

युद्ध से पूर्व कल्लाजी ने घोषणा की – ''जो सर्वप्रथम गमेती पेमला का शीश काटेगा उसे दस हजार की जागीरी दी जायेगी और ग्यारह हजार रूपये की राशि प्राप्त होगी। यदि किसी ने वीरगति प्राप्त की तो यह राशि उसके परिवार को प्राप्त होगी। और यदि यह कार्य मेरे हाथों सम्पन्न हुआ तो मैं एक हजार गायें दान करूंगा।'' इस युद्ध में लगभग 4000 दस्यु और 500 राजपूतों की बलि लेकर रणचण्डी की तृप्ति हुई। गमेती पेमला का सिर काटने वाले वीर सेनापति रणधीर को पुरस्कार स्वरूप रठौड़ा ग्राम जागीर में प्रदान किया गया तथा महाराणा उदयसिंह जी ने विक्रम संवत 1622 को वैशाख शुक्ला 13 सोमवार के दिन श्री कल्ला महाराज को एक बहुत बड़े क्षेत्र का मालिक बनाया। कल्लाजी ने टोकरगढ़ एवं रठौड़ा ग्राम में सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था का प्रबन्ध किया। (सुखवाल 1995)।

एक बार सोम नदी के किनारे भगवान देव सोमनाथ के दर्शन करने के पश्चात् पहाड़ी पर एक गुफा में योगीराज भैरवनाथ के कल्लाजी ने दर्शन किये। कल्लाजी ने इन्हें अपना गुरू बनाया। गुरू ने कल्लाजी को योग विद्या की कठिन साधना सिखाई। इस विद्या से कल्लाजी ने समाधिस्थ होकर अपने भविष्य के दर्शन किये। भविष्य दर्शन में कल्लाजी आगरे में अकबर के दरबार में पहुंचते हैं। वहां देखते हैं कि अकबर सिंहासन पर विराजमान हैं और चित्तौड़ पर आक्रमण की योजना बन रही है। उधर शिवगढ़ से विवाह का प्रस्ताव तथा राजकुमारी कृष्णा का अनन्य प्रणय निमन्त्रण, इसी समय बादशाह की बड़ी भारी फौज का चित्तौड़ पर आक्रमण, विवाह के अवसर पर बारात वधु के द्वारा पहुंचने पर तोरण से पूर्व ही युद्ध का निमंत्रण, चित्तौड़ दुर्ग पर भयंकर युद्ध में कल्ला द्वारा अप्रतिम वीरता का प्रदर्शन, युद्ध में वीरगति प्राप्त करना, शीश कट जाने पर कबंध का रणढ़ालपुर पहुंचाना, कृष्णकान्ता का कबन्ध स्वागत और अपनी प्रिया सहित स्वर्गारोहण आदि सब दृश्य देख श्री कल्ला का सूक्ष्म शरीर पुनः स्थूल शरीर में प्रवेश कर गया।

मुगल बादशाह अकबर ने लगभग सारा राजपूताना कब्जे में कर लिया था परन्तु मेवाड़ का राणा उदयसिंह उसकी गिरफ्त में नहीं आया था। मालवा के सुल्तान बाज बहादुर ने अकबर के भय से भाग कर उदयसिंह की शरण ली थी। अकबर को बुरा लगना ही था। इसलिए उसने चित्तौड़ विजय की कामना से विक्रम संवत् 1924 आसोज बदी 12 (31 अगस्त, 1567) को

आगरा से कूच किया। महाराणा उदयसिंह ने अपने प्रधान सेनापति राव जयमल तथा अन्य सामन्तों को बुलाकर विचार–विमर्श किया। उदयसिंह ने कहा, ''मैं सूर्योदय होते ही शत्रु सेना को नष्ट कर दूंगा।'' परन्तु जयमल, पन्ना, ईश्वरदास आदि सामन्तों ने आग्रह किया कि हम सबके शहीद होने पर भी आप जीवित रहे तो फिर भी सेना एकत्रित कर सकते हैं और मेवाड़ को बचा सकते हैं। उन्होनें राव जयमल जी, जो मेवाड़ में बदनोर के शासक थे, उनको दुर्गाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष नियत कर दुर्ग की रक्षा का सम्पूर्ण भार सौंप दिया तथा 8000 वीर राजपूत सैनिक युद्धार्थ नियत कर दिये।

महाराणा उदयसिंह एवं सेनापति जयमल ने वीर कल्ला के पास हरकारा भेजकर चितौड़ आने का संदेश प्रेषित किया। अपने वीर राजपूत रणरंगियों पर चित्तौड़ की रक्षा का भार छोड़ महाराणा उदयसिंह कुंभलगढ़ के सुरक्षित महलों में चले गए।

सेनाध्यक्ष जयमल ने दोनों हाथों में तलवार उठाकर युद्ध की घोषणा कर दी। वीर जयमल और कल्लाजी जिधर मुंह कर लेते मुगलों के धड़ उछलते नजर आने लगे। ये अपने प्राणों का मोह छोड़कर अपनी दोनों भुजाओं से तलवारें चलाते हुए देशभक्त, शूरवीर सैनिक एवं क्षत्रियों के साथ शत्रुदल पर भूखे शेर की भांति महाकाल बनकर टूट रहे थे। अकबर भी कल्ला के युद्ध–कौशल पर वाह–वाह कर उठा। जयमल, पन्ना और कल्ला का भीषण युद्ध कौशल देख अकबर ने शपथ ली कि यह दुर्ग जब जीत लिया जायेगा तब वह पैदल चित्तौड़ से अजमेर तक मोइनुद्दीन चिश्ती की मजार की जियारत करेगा। (सुखवाल 1995)।

कई दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। इधर बादशाह की बंदूक से निकली हुई गोली किले के भग्नांश के पुनः निर्माण कार्य का निरीक्षण करते हुए राव जयमल की जांघ में जाकर लगी, जिससे घायल होकर वे चलने में असमर्थ हो गये, सेनाध्यक्ष की जख्मी हालत और भोजन सामग्री की बिल्कुल कमी को देखकर सब सरदारों ने राव जयमल की सलाह के अनुसार अगले दिन अन्तिम युद्ध करने का निश्चय कर अपनी–अपनी स्त्रियों और बाल–बच्चों को जौहर करने की आज्ञा दे दी। 24 फरवरी 1568 को रावत पन्नाजी सिसोदिया, खांजी चौहान और राठौड़ ईसरदास जी की हवेलियों में जौहर हुआ। 13000 राजपूत रमणियाँ, कुमारियाँ सहित दुध मुँहे शिशु कुमार को गोद में लेकर बलिदान हेतु चिता पर बैठ गई।

25 फरवरी 1568 को निर्णायक युद्ध हुआ। शाके की सभा में जयमल ने कहा– मैं साठ वर्ष का वृद्ध हो चुका हूँ। मेरी जंघा मे गोली लगने से मैं घोड़े या हाथी पर बैठकर युद्ध नहीं कर सकता, फिर भी सियार की मौत मरने की अपेक्षा रणक्षेत्र में शत्रुओं का संहार करते हुए वीरगति प्राप्त करना चाहता हूँ। इसके लिए कोई युक्ति बताओ। तब श्री कल्ला ने अपनी भयंकर हुंकार भरी और निवेदन किया, ''हे दुर्गेश, मेरी पीठ पर बैठकर दोनों हाथों में आप भवानी (तलवार) धारण करें और मैं भी। आप मेरे स्कन्धारूढ़ होकर अपनी रणाकांक्षा को मन भरकर पूरी कर लीजिए। जयमल को कन्धे पर बिठाकर घोड़े पर बैठकर 23 वर्षीय वीर केसरी श्री कल्लाजी आगे बढ़े। जयमल तथा कल्ला को एक देह में चार भुजाओं से चारों तलवारों को चलती देखकर अकबर भी भयभीत हो गया। उसे यह भ्रान्ति होने लगी कि आज हिन्दुओं का ''चारभुजा'' स्वयं संग्राम करने आ गया हैं। चारों तलवारें चलाने से लाशों के ढ़ेर लग गये (इसी वीरता के कारण कल्लाजी की ख्याति चार हाथ दो सिर वाले चतुर्भुज, देवता के रूप में हुई) तब अकबर ने निरूपाय हो मतवाले खूनी हाथी राजपूतों की ओर छोड़ दिये। श्री कल्ला चक्राकार तलवारें चलाता हुआ युद्ध कर रहा था कि एक शाही सवार ने उचक कर पीछे से तलवार चला दी। वीर कल्ला का सिर कट कर जयमल के पास जा पड़ा। अब बिना सिर के वीर कल्ला का कबंध महाघोर संग्राम करता हुआ दोनों हाथों में तलवार चलाता हुआ शत्रु सेना में घुस पड़ा। कबन्ध युद्ध करते–करते वीर कल्ला ने शत्रु सेना में त्राहि–त्राहि मचा दी। शाही फौज रास्ता छोड़कर खड़ी हो गई। कल्ला का विकराल कबंध खड्ग चलाता सेना की ओर बढ़ने लगा। कहते हैं कबन्ध मंगलवाड़, कुराबड़, बम्बोरा, जगत और जयसमन्द होता हुआ रनेला जा पहुंचा। रनेला वासी सिद्धगुरू भैरवनाथ के आशीर्वाद से कल्लाजी के कबन्ध को महाकाल की तरह बढ़ते और आते देखकर जय जयकार कर उठे।

चिता सजाई गई। राजकुमारी कृष्णकान्ता ने एकाग्रचित हो ईश्वर से प्रार्थना की कि हे ईश्वर ! मेरा इस जन्म में मन, वचन और कर्म से केवल मेरे प्रियतम कल्लाजी के अलावा किसी भी पुरूष के प्रति कोई भी विकार नहीं रहा हो तो उनका शीश जो रणभूमि चितौड़ में हैं, मुझे प्राप्त हो जावे। ऐसा कहते हैं कि कृष्णकान्ता की अटूट आस्था से वीरवर कल्लाजी का शीश उनकी गोद में आ गया। 26 फरवरी 1568 को नर नाहर, सन्त शिरोमणी, योगीराज कल्ला ने अपनी सदा सुहागिन प्रिया कृष्णकान्ता सहित अपनी भौतिक देह को त्यागकर अमरत्व का चोला धारण किया।

लोक देवता के रूप में श्री कल्लाजी

मान्यता है कि कल्लाजी शेषनाग के अवतार थे। इनकी पूजा नाग रूप में भी की जाती है। इनके मन्दिर के पुजारी सर्पदंश से पीड़ित लोगों का ईलाज करते हैं। कमधज, कमधण, केहर, योगी, बाल ब्रह्मचारी, कल्याण आदि नामों से पूजनीय कल्लाजी के मध्यप्रदेश, गुजरात, मारवाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर और मेवाड़ में करीब 500 मन्दिर हैं। अकेले बांसवाड़ा जिले में उनके 200 मन्दिर हें। इनका मुख्य स्थान रूण्डेला (सलूम्बर के पास– ग्राम पंचायत, बरोड़ा) में है। रूण्डेला में बावजी का रूण्ड आकर एक खेजड़ी के नीचे गिरा। उस खेजड़ी में ऊपर से बारिश हुई, कल्लाजी ने जलग्रहण किया, बाद में शरीर छोड़ा। आज भी खेजड़ी हरी–भरी मौजूद हैं जिसके ऊपर माताजी की प्रतिमा स्थापित कर रखी है। चित्तौड़ में किले के नीचे इनकी छतरी बनी हुई है। उदयपुर शहर में कल्लाजी के पांच स्थान बने हुए हैं, चितौड़ में 3 स्थान, बिछीवाड़ा में 2 स्थान तथा वलाद (अहमदाबाद), ऋषभदेव (श्री कल्याण शक्ति पीठ मईयाधाम), जाम्बुड़ा, सेमारी, निम्बाहेड़ा, चौपासाग, वरदा आदि अनेक स्थानों पर कल्लाजी के मन्दिर बने हुए हैं। इन मन्दिरों पर हर शनिवार–रविवार को श्रद्धालु बड़ी संख्या में एकत्रित होते

हैं। कल्लाजी एक व्यक्ति (भोपा) के शरीर में प्रवेश करते हैं और उनके आशीर्वाद से भक्तजन अपने दुःखों और बीमारियों से छुटकारा पाते हैं। गुजरात में ये भाथी खत्री के नाम से विख्यात है तथा मालवा में इन्हें जुझारू वीर नायक के रूप में पूजा जाता है। नवरात्रि में रविवार को आसोज माह में आज भी गांवों में भव्य मेले लगते हैं एवं घर–घर में इनकी पूजा होती है। हजारों यात्री पूर्ण भक्ति से अनेक वस्तुएँ कल्लाजी के मन्दिर में चढ़ाते हैं। इनकी पूजा में केसर का विशेष रूप से उपयोग होता है। मेवाड़ राज्य तथा अनेक बड़े–बड़े ठिकानों की तरफ से कल्लाजी के भेंट चढ़ाई जाती हैं।

ऐसा माना जाता है और विज्ञान भी इसे मानता है, परामनोवैज्ञानिक भी इसे मानते हैं कि जिस आत्मा की साध अपूर्ण रह जाए वह वहीं–कहीं विद्यमान रहती है। सर्वजन के दुख से दुःखी होने वाले, जन–जन का त्राण करने वाले, क्षत्रिय धर्म के मर्म की रक्षा हेतु शरणागत की विपत्ति हरने वाले श्री कल्लाजी की दिवंगत आत्मा की लोक कल्याण की साध अपूर्ण रह गई थी। कहते हैं वह अपनी अभिव्यक्ति के उपयुक्त माध्यम किसी भोपा को पाकर आज भी धरती पर अविर्मूत होती हैं, और उस माध्यम द्वारा अपनी उपस्थिति में भूत–पिशाच ग्रस्त लोगों, रोगी, पशुओं, सर्प, पागल कुत्ता, गोपड़ा, बिच्छु आदि विषैले जन्तुओं से दंशित व्यक्ति अथवा पशु, अन्य कई बीमारियों से ग्रस्त रोगी, क्लेश अथवा चिन्ता के विभिन्न कारण श्री कल्लाजी महाराज की साधना शक्ति से तुरन्त ठीक हो जाते हैं। 450 वर्षों से श्री कल्लाजी राठौड़ एक जीवित आत्मा के रूप में नाग शक्ति का प्रतीक बन राजस्थान, गुजरात एवं मालवा प्रदेशों में पूजे जाते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में इनके प्रति गहन आस्था दृष्टिगोचर होती है। इसी विश्वास से मानव (भक्त) बड़े से बड़े संकट में, महान कार्यों में बल, ऊर्जा, उत्साह एवं संयम प्राप्त करने में समर्थ होता है। जैसी आस्था एवं विश्वास के साथ भक्त उनके मन्दिर में जाते हैं वैसा ही फल उसे प्राप्त होता है। आध्यात्मिक विषय में आस्था एवं विश्वास का ही महत्त्व हैं।

कल्लाजी के कुछ प्रमुख धाम

रनेला (रणढ़ालपुर)

श्री कल्लाजी की वीर आत्मा एवं लोक देवता के रूप में सर्वप्रथम पूजा रनेला में आरम्भ हुई। यह स्थान सलूम्बर से ईटालीखेड़ा के रास्ते पर बीच में दाहिनी ओर जाने वाली सड़क पर आता है। कल्लाजी का कबन्ध बिना सिर के आया था तथा उसी स्थल पर एक मन्दिर बनाया गया है, पास ही शिलालेख एवं पानी की बावड़ी मौजूद हैं। पास ही महालक्ष्मी का मन्दिर हैं। राजकुमारी कृष्णकान्ता ने कल्लाजी के साथ इस नश्वर शरीर को त्यागा था, उसी स्थान पर बने मन्दिर में माँ कृष्णा कुंवर की पूजा वहाँ के लोग साक्षात लक्ष्मी के रूप में पूजते हैं यहाँ के महन्त कल्लाजी के भाई तेजसिंह के वंशज हैं।

मईयाधाम (ऋषभदेव)

ऋषभदेव (केसरियाजी) से 2 कि.मी. आगे अहमदाबाद रोड़ पर फोरलेन के बायें तरफ यह स्थान बना हुआ है, जो 'श्री कल्याण शक्तिपीठ' के नाम से भी मशहूर हैं। श्री कल्लाजी के मन्दिर के साथ यहाँ हिंगलाज माताजी एवं हनुमानजी के भी मन्दिर बने हुए हैं। 125 वर्षों से यहाँ कल्लाजी की पूजा होती आ रही हैं। श्री गणेशलाल जी रावल एवं श्री करूणेश्वर जी रावल यहाँ के महन्त (भोपा) हैं। प्रतिवर्ष जन्मोत्सव पर यहाँ विशाल मेला भरता हैं। प्रत्येक रविवार को कल्लाजी भोपा के शरीर में प्रविष्ठ होकर दुःखी–दर्दियों की समस्याओं का समाधान करते हैं।

चित्तौड़–छतरी

चित्तौड़ किले के रास्ते में चढ़ाई पर हनुमान पोल और भैरवपोल के बीच दो छतरियाँ हैं। छः खम्भों वाली छतरी राव जयमल की हैं तथा चार खम्भों वाली वीर कल्लाजी राठौड़ की हैं। यहाँ पर स्मारक के रूप में दो शिलाएं प्रतिमा स्वरूप खुदी हुई हैं। जहाँ कई लोग वर्षों से इत्र, अगरबत्ती, दीपक करते हैं, श्रीफल चढ़ाते हैं और मन्नत लेते हैं। श्री प्रेमजी शर्मा यहाँ के सेवक हैं। इसी स्थान पर कल्लाजी का मुण्ड कटा था। कहते हैं उस मुण्ड को मातेश्वरी ने गिरने से पहले ही पकड़ लिया था। मुण्ड कटने के बाद भी साढ़े तीन दिन तक कल्लाजी ने युद्ध किया था।

हाथीपोल–उदयपुर (परिहार हाऊस)

यह स्थान हाथीपोल से मालदास स्ट्रीट रोड़ पर है। यहाँ के सेवक श्री अशोक परिहार हैं। इनके घर में ही कल्लाजी का मन्दिर बना हुआ है। सन् 2007 से आपमें कल्लाजी पधार रहे हैं। इनके अनुसार आध्यात्मिक व्यक्तित्व के लक्षण इनमें प्रारम्भ से ही थे। इत्र लगाना, खस–खस खाना, शौक से शस्त्र चलाना, शादी–विवाह में शानो–शौकत से रहना आदि। श्री अशोक जी का कहना था कि पूर्व जन्म के कर्म एवं बावजी (कल्लाजी) से जुड़ाव रहा होगा, इसीलिए चाकरी मिली।

शरीर में बावजी का पधारना

श्री अशोक जी ने बताया कि इनकी दादीजी के शान्त होने के बाद भाभीजी की तबीयत खराब रही, इलाज के बाद भी ठीक नहीं हुए। एक स्थान (देवरे) पर जाकर पूछताछ की तो कहा गया कि घर में मांस–मदिरा बन्द करो, दादीजी को पूर्वज देवता का स्थान दो। दादीजी को स्थान देने के बाद भाभीजी ठीक हो गये। उसी समय (मार्च 1993) व्यसन करना छोड़ दिया। आज घर में सभी लोग शुद्ध सात्विक जीवन जीते हैं, पूरा परिवार धर्म एवं आध्यात्म की राह पर है।

इनकी जन्म कुंडली में काल में सर्प योग हैं जो उन्नति में बाधक हैं। किसी किताब में पढ़ा कि कल्लाजी की आराधना करने से काल–सर्प योग दूर हो जाता है। मैंने कल्लाजी की आराधना प्रारम्भ कर दी। इत्र की अंगुली दीवार पर लगाकर कल्लाजी बावजी के नाम से आराधना शुरू की। इससे पूर्व किसी कल्लाजी के स्थान पर नहीं गया था। एक बार वरदा (डूंगरपुर) गया, वहाँ के सेवक श्री भीमसिंह जी को ऐसा लगा कि मेरे पर बावजी की कृपा आस्था है। 2007 में हाथीपोल के पास भेरूजी के स्थान पर कल्लाजी बावजी सार्वजनिक रूप से पहली बार मेरे शरीर में पधारे और अपना परिचय दिया। इसके तीन–चार वर्ष पूर्व मुझे शरीर में लक्षण महसूस हो रहे थे। फतहसागर में नहाते समय बावजी दर्शन देते थे। परिवार वालों को भी घर पर दर्शन दिये।

एक बार घर पर ही श्री भीमसिंहजी में बावजी की गादी हो रही थी, तब उन्होनें बावजी को कहा कि हम आपको यहाँ स्थान दे रहे हें, आप यहाँ बिराजें। हमने घर पर बावजी की छवि (तस्वीर–मूर्ति) स्थापित की। भीमसिंह जी ने सेवा पद्धति बताई। बावजी ने कहा कि एक बार तुम्हें भी रूण्डेला जाना पड़ेगा। तब रूण्डेला जाकर धोक दी। बावजी ने वहाँ कहा कि तुम्हें मेरा अधिकृत चाकर बनाउंगा। मई 2008 में वैशाखी पूर्णिमा पर पूरे परिवार के साथ रूण्डेला गये। वहाँ पर स्नान करने को कहा, साथ में लेकर गये नए वस्त्र धारण किये, पुराने वस्त्र वहीं त्याग दिये और पूर्व वृत्ति का भी त्याग कर दिया। मेरे पर भी मालिक की सेवा करवाई, मूल गादी वहाँ के सेवक शम्भुसिंहजी में हुई थी। बावजी ने कहा ''6 दिन तेरे, रविवार का दिन मेरे लिए देना होगा''। मैंने कहा, बावजी, रविवार ही क्या मेरा पूरा जीवन आपको समर्पित हैं। वहां से गादी, कड़ा और खड्ग प्रदान की गई।

इस स्थान पर रविवार की सुबह 7–11 बजे तक विशेष सेवा एवं श्रृंगार होता है। श्रावण शुक्ल अष्टमी को कल्लाजी का जन्मोत्सव जोर–शोर से मनाया जाता है। इस दिन बावजी पधारते हैं, अन्य स्थानों (कल्लाजी, सगसजी) के सेवक भी पधारकर भक्तों को आशीर्वाद देते हैं। एक देव–दूसरे देव का सम्मान करते हैं।

धर्म, परम्परा, धार्मिक विश्वास एवं जन आस्थाः

धर्म, परम्परा, अध्यात्म, धार्मिक विश्वास, जन कल्याण, जन–आस्था आदि अवधारणायें भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक प्रमुख पहचान हैं। ''धर्म' देवी–देवताओं तथा अन्य अधि मानवीय प्राणियों जैसे पूर्वज अथवा आत्माओं के प्रति विश्वास तथा इनसे सम्बन्धित कर्मकाण्ड हें। ''परम्परा'' शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है, जिनका उद्‌गम स्मृतियों, ऋषि–मुनियों के आप्त वाक्यों अथवा पौराणिक नायकों द्वारा प्रदत्त ज्ञान से होता है। अध्यात्म लौकिक जगत को अलौकिक जगत से जोड़ता हैं। विश्व के प्रति सामान्य धारणाओं को विश्वास कहते हैं। यह किसी प्रस्ताव अथवा विचार को सत्य मानने का द्योतक हें। सामान्यतः यह स्वीकृति बौद्धिक होती हैं, किन्तु कभी–कभी यह उद्वेगों द्वारा प्रेरित भी हो सकती है। विश्वास व्यक्ति में एक ऐसी मानसिक दशा का निर्माण करते हें जो उसके स्वैच्छिक क्रिया के जनक का काम करती हैं। धार्मिक विश्वास जन–कल्याण एवं जन आस्था पर टिका हुआ है। इसी धार्मिक विश्वास के आधार पर लोक देवताओं की पूजा न सिर्फ उनके मन्दिरों में होती है, बल्कि सीधे–सादे भक्तों के हृदय में भी इनकी पूजा होती है।

रोबर्ट टेडफील्ड ने वृहत् (महान) एवं लघु परम्परा की अवधारणा का प्रतिपादन किया। महान परम्परा से तात्पर्य ऐसे उच्च एवं बौद्धिक विचारों से हैं जिनका जन्म और विकास विद्यालयों तथा देवालयों में होता है। इसे अभिजन या नगरीय परम्परा भी कहा जाता है। धार्मिक रूप से शिव, राम, कृष्ण आदि वृहत परम्परा से सम्बद्धित हैं। लघु परम्परा से तात्पर्य ऐसे विचारों से हैं जिनका उद्‌गम गांवों (स्थानीय संस्कृति) में होता है। इसका विकास ग्रामीण समुदायों में रहने वाले अप्रबुद्ध एवं सामान्यजनों के बीच स्वतः होता है। लघु परम्परा के परिष्करण करने तथा सजाने–संवारने का कोई सचेतन प्रयास नहीं किया जाता। इसे 'लोक परम्परा' के नाम से भी जाना जाता है। लोक देवता लोक परम्परा से सम्बन्धित है। धर्म, विश्वास एवं आस्था की दृष्टि से देखें तो लोक देवता एक क्षेत्रीय समूह में महान एवं लघु (नगरीय एवं ग्रामीण) परम्परा दोनों से सम्बन्धित हें। नगर एवं गांव दोनों ही क्षेत्रों में इनके मन्दिर एवं देवालय है। आध्यात्मिक विषय में आस्था एवं विश्वास का ही महत्त्व हैं, इसमें तर्क की कोई जगह नहीं है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज की लोक परम्परा एवं संस्कृति में लोक देवता अपना विशेष प्रकार्यात्मक स्थान रखते हैं। यह जन–समूह की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, अधि वैयक्तिक, अधि प्राकृतिक आदि विविध परेशानियों एवं समस्याओं का निराकरण एवं समाधान प्रस्तुत करके उन्हें शान्ति एवं सुखी जीवन प्रदान करते हैं। लोक देवताओं के प्रति विश्वास लोगों को मानसिक एकता एवं एकीकरण के सूत्र में बांधता है। इनके माध्यम से हमारी लोक परम्परायें एवं लोक संस्कृति आगे की ओर संचरित होती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

श्यामलदास, ''वीर विनोदः मेवाड़ का इतिहास,'' भाग -IV प्रथम मुद्रणः राजयन्त्रालय, उदयपुर 1886, पुनर्मुद्रण–मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1986.

सुखलाल, घनश्याम, ''वीर कल्ला राठौड़', साहित्यागार, जयपुर, 1995.

सिसोदिया, महेन्द्रसिंह, '' राष्ट्ररक्षकः शूरवीर कल्लाजी राठौड़,'' भाग–1, वया प्रिन्टर्स, उदयपुर

आहूजा, डी.आर. ''राजस्थानः लोक संस्कृति और साहित्य,'' नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2011.

पत्रिका इयर बुक, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2007.

सिंह, योगेन्द्र, ''भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण,'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2006.